उपासना और ज्ञान का स्वरूप : एक विवेचन

प्रस्तुतकर्ता– डॉ0 प्रभाकर मिश्र
सहायक आचार्य, गनपत सहाय पी0जी0 कालेज,
सुल्तानपुर

प्राचीन काल से लेकर आज तक विश्व के सभी धर्मों में उपासना को प्रमुख स्थान दिया जाता है। उपासना के सम्बन्ध में कोई सर्वसम्मत और निश्चित परिभाषा दे पाना कठिन कार्य है, लेकिन प्रार्थना के साथ इसकी तुलना करते हुए हम इसके अर्थ को स्पष्ट कर सकते हैं। ''उपासना'' के लिए अधिकतर ''प्रार्थना'' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसमें अपनी अपेक्षा उच्चतर या अधिक योग्य व्यक्ति से विनम्रतापूर्वक कुछ याचना करने का भाव अनिवार्य रूप से निहित रहता है। ''उपासना'' के अर्थ की अपेक्षा ''प्रार्थना'' का अर्थ अधिक व्यापक है, क्योंकि मनुष्य केवल किसी देवता या ईश्वर से ही नहीं, बल्कि उस व्यक्ति से भी प्रार्थना करता है, जिसे वह अपनी अपेक्षा योग्य या शक्तिशाली समझता है। इसके विपरीत ''उपासना'' शब्द का प्रयोग किसी दैवी शक्ति या ईश्वर से की जाने याचना के लिए ही किया जाता है मनुष्य से किये जाने वाले अनुरोध के लिए नहीं। दूसरे शब्दों में वह सकते हैं कि प्रार्थना का धार्मिक होना अनिवार्य नहीं है, जबकि किसी अतिन्द्रिय शक्ति से अनिवार्यतः सम्बन्धित होने के कारण ''उपासना'' धार्मिक क्षेत्र तक ही सीमित है। जब भी कोई व्यक्ति स्वयं अपने आपको तुच्छ मानकर ईश्वर या किसी अन्य अतीन्द्रिय शक्ति से अपने लिए सांसारिक अथवा पारलौकिक सुख की नम्रतापूर्वक याचना करता है, तो उसकी इस धार्मिक क्रिया को ''उपासना'' की संज्ञा दी जा सकती है। उपासना एक ऐसी धार्मिक क्रिया है जिसके लिए उपासक तथा आराध्य इन दो पक्षों का होना आवश्यक है।

उपासना एक धार्मिक क्रिया है। यह भी कहा जा सकता है कि धर्म के उद्‌गम के साथ– साथ किसी न किसी रूप में उपासना का भी जन्म हुआ होगा। जब हम धर्मकी उत्पत्ति पर विचार करते हैं तो यह समझ में आता है कि अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में जीवन के लिए सतत् संघर्ष करने वाले आदि मानव के अन्तर्मन में प्रतिकूल प्राकृतिक शक्तियों तथा भयानक पशुओं के भय के कारण उत्पन्न असुरक्षा एवं असहाय अवस्था के उपरान्त निरन्तर जो भय बना रहता था, उसी से धर्म का उद्‌गम हुआ होगा। मानव ने असहाय एवं भय से त्रस्त होने के कारण ही ऐसी अतीन्द्रिय शक्तियों की कल्पना की जिनसे वह सुरक्षा और सहायता की याचना कर सका होगा । इस कल्पित अतीन्द्रिय शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए ही उसने आराधना या उपासना करना आवश्यक समझा। आज भी धर्म और उपासना के मूल में मनुष्य की ''भय मिश्रित श्रद्धा'' परिमार्जित रूप में विद्यमान है। उपासक अपने आप को असहाय, नगण्य, एवं तुच्छ मानकर ही ईश्वर की आराधना करता है, और उसकी शरण में जाता है। उपासना का उददेश्य सांसारिक सुख, स्वर्ग– सुख अथवा आध्यात्मिक आनंद प्राप्त करना हो सकता है। कोई व्यक्ति किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उपासना करता है यह उसके स्वभाव तथा जीवन और जगत के प्रति उसके दृष्टिकोण पर निर्भर है। अधिकतर व्यक्ति प्रायः सांसारिक सुख, मानसिक शान्ति तथा स्वर्ग– सुख की कामना से प्रेरित होकर ही ईश्वर की आराधना करता हैं। इस प्रकार उपासना का मूल उद्देश्य अन्क्ततः

किसी न किसी रूप में स्वयं उपासना की आत्म संतुष्टि ही है। लेकिन उपासना सदैव आत्म केन्द्रित एवं स्वार्थमूलक होना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि कुछ व्यक्तियों को दूसरों के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करके वास्तविक आत्म संतुष्टि प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति में हम यह देखते हैं कि उपासना परोपकार मूलक भी होती है।

सभी उपनिषदों में ज्ञान और उपासना की विधियों से मुक्ति का मार्ग दिखाया गया है। उपासना ''संवादी भ्रम'' के समान उपयोगी और कारगर है। भ्रम दे प्रकार के हेाते हैं– संवादी भ्रम और विसंवादी भ्रम। जिस प्रकार से प्रवृत्त हुए व्यक्तियों को इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे संवादी भ्रम कहते हैं और जिस भ्रम से कर्म में प्रवृत्त होने पर इष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं होती उसे विसंवादी भ्रम कहते हैं जैसे कोई व्यक्ति मणि की प्रभा को ही मणि समझे तो वह भ्रम है। चाहे दीपक की प्रभा को मणि समझे तो वह भी भ्रम है चाहे दीपक की प्रभा को मणि समझे या मणि की प्रभा को मणि समझे– दोनो ही भ्रम है किन्तु इन दोनो भ्रमों का फल एक समान नही है। मणि प्रभा को मणि समझकर उसे पाने के लिए दौड़ने वाला व्यक्ति निकट पहुंच कर मणि पा लेता है किन्तु दीप प्रभा को मणि समझकर उसकी ओर दौड़ने वाले को मणि मिलती। इस प्रकार दीपक की प्रभा में हुई मणि की भ्रान्ति ''विसंवादी भ्रम'' है और मणि की प्रभा में मणि की भ्रान्ति ''संवादी भ्रम'' है क्योंकि इस प्रकार न सुख मिलता है और न मुक्ति। अपने हृदय में विद्यमान अपने आनन्द स्वरूप आत्मा को ब्रह्म समझना संवादी भ्रम है। समस्त संवादी भ्रम को तीन वर्गों में बांट सकते हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और शास्त्र सम्बन्धी। मिट्टी, काष्ठ, पाषाण, अथवा धातु की मूर्ति में देवता का अस्तित्व स्वीकार कर उसकी पूजा करना शास्त्रीय संवादी भ्रम का उदाहरण है। ऐसी उपासना से इच्छित फल की प्राप्ति भी होती है। सामवेदीय छान्दोय उपनिषद् में स्पष्ट रूप से पृथ्वी आदि में पंच भूतों को देवा बुद्धि से उपासनीय बताया गया है।

उपनिषदों में ब्रह्मतत्व की उपासना का विधान है। ब्रह्मा उपासना का विषय नहीं हो सकता, वह अचिन्तय है, फिर भी जैसा कुछ बुद्धि में आता है, उसका स्मरण ध्यान रखने से मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं यह भी एक संवादी भ्रम है। उपनिषदों के श्रवण से हम जान जाते हैं कि ब्रह्म अपनी सत्ता से विरद्यमान अनादि अनन्त तत्व है। वह चेतनस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अखण्ड एकरस और निर्विकार है। मेरा वास्तविक स्वरूप भी वही तत्व है। मैं उससे अभिन्न हूं। शरीर– मन बुद्धि की उपाधियाँ मिथ्या है। जब तक हम यह सब स्वयं अनुभव नहीं करते, हमारा यह ज्ञान परोक्ष है, अर्थात केवल बौद्धिक स्वीकृति मात्र है, उत्तम अधिकारी श्रवण कर उसके अनुरूप अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। यह उनका अपरोक्ष ज्ञान है। किन्तु मन्द अधिकारी बार– बार के श्रवण के बाद भी परंपरा का अपरोक्ष ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते। वे परोक्ष ज्ञान के आधार पर उपासना करते हैं। उपासक अपने हृदय में परोक्ष से ज्ञात परमात्मा का स्मरण कर उसी के साथ अपना तादात्म्य करने का प्रयास करता है। बहुत काल तक ऐसी उपासना करने से परमात्मभाव उत्पन्न होता है और मुक्ति भी प्राप्त हो जाती है।

विष्णु की मूर्ति का ज्ञान शास्त्र द्वारा होता है। हमने उन्हें देखा नही है। शास्त्र बताते हैं कि विष्णु भगवान चार भुजाधारी हैं। उन हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं। जैसे विष्णु भगवान

का यह ज्ञान परोक्ष है वैसे ही निर्गुण ब्रह्म का भी परोक्ष ज्ञान शास्त्र द्वारा प्राप्त हो सकता है। तैत्रियउपनिषदों में कहा गया है– 'सत्यज्ञानमनन्त ब्रह्म'। यो वेद निहितं गुहायां परम व्योमन्। सोश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्राह्मणा विपश्चितेति । ब्रह्म सत्य ज्ञान स्वरूप और अनन्त है। जो मनुष्य हृदय गुहा के परम विशुद्ध आकाश में छिपे हुए उस ब्रह्म को जानता है वह उस विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों को प्राप्त करता है। इस प्रकार शास्त्र प्रमाण से परमात्मा का तथा आत्मा और परमात्मा की एकता का परोक्ष ज्ञान होता है। अपरोक्ष ज्ञान के लिए शास्त्र वचनों का अनुसन्धान और विचार करना होता है। यदि विचार करने से भी ज्ञान परोक्ष से अपरोक्ष न हो तो इसका अर्थ है कि देहात्म बुद्धि बहुत प्रबलता से जाग्रत है। अपने शरीर को ही अपना अस्तित्व समझने वाले के लिए विचार करने पर भी आत्म ज्ञान नहीं होता है। बहुत लोगों के साथ यह सम्भावना हो सकती है कि विचार करें, फिर भी उनके हृदय में ज्ञान उदय नहीं हो सकता है उनका मन इतना एकाग्र और शुद्ध न हो जितना अपरोक्ष ज्ञान के लिए अपेक्षित है। वे जप तप आदि साधना करते हुए विचार करते रहे। यदि विचार करते हुए मृत्यु भी हो जाय तो भी इस जीवन का किया हुआ प्रयास व्यर्थ नहीं जाता अगले जन्म में विचार के फलस्वरूप अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त होना वस्तुतः आत्म ज्ञान पर अज्ञान का आवरण है, उसके दूर होते ही स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मतत्व का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढ़का हुआ है। उसी से सब मोहित हो रहे हैं परन्तु जिनका वह अज्ञान आत्म के तत्वज्ञान द्वारा नष्टकर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश आत्मा को प्रकाशित कर देता है जैसे सूर्य पर छाये बादल का आवरण उसे ढक लेता है और उस आवरण के हटने पर प्रकाशस्वरूप सूर्य दिखाई देने लगता है, ऐसे ही अविधा दूर होते ही ब्रह्म और एकता का ज्ञान स्वयं प्रकाशित होने लगता है। यह आवरण चाहे इस जीवन में हटे अथवा अनेक जन्मों के बाद हमें आत्म चिन्तन करते रहना चाहिए।

वशिष्ठ जी के उपदेश में मंकि नामक ब्राह्मण को एक जन्म में ही ब्रह्मज्ञान हो गया। याज्ञवलक्य ऋषि के उपदेश से राजा जनक को भी वह ज्ञान हो गया। वामदेव ऋषि को पूर्व जन्म में बारम्बार किये गये विचार से गर्भ में शयन करते समय आत्मज्ञान हो गया था। इससे सिद्ध होता है कि यदि विचार करने पर भी अविधा का आवरण एक जन्म में नहीं हटा तो अगले आने वाले जन्मों में अवश्य हटेगा। जैसे कोई छात्र दिन भर पढ़ने पर भी अपना पाठ याद नहीं कर पाता है, किन्तु कभी– कभी प्रातःकाल उठते ही पिछले दिन का उसे याद आ जाता है क्योंकि रात्रि में सोते समय चित्त सक्रिय रहता है एक जीवन के संस्कार संगृहीत होकर चित्त में ही रहते हैं। वे अगले जीवन तक उसके साथ जाते हैं। इसलिए वेदान्त का मनन करने वाला वामदेव का चित्त निरन्तर काम करता रहा और गर्भवास के समय उन्हे ज्ञानोदय हुआ। इसलिए मुमुक्ष पुरुष को निरन्तर आत्मचिन्तन करते रहना चाहिए। जब अविधा का आवरण हटेगा, उसे स्वयं प्रकाशवान आत्मा का अनुभव होगा।

भगवतगीता में उस पुरूष को योग भ्रष्ट कहा गया है जो ब्रह्मज्ञान आदि प्राप्त करते हुए विचार आदि साधनों में प्रवृत्त होता है, किन्तु लक्ष्य प्राप्त करने से पूर्व ही शरीर छोड़ देता है। ऐसे योग भ्रष्ट

पुरुष भी दो प्रकार के होते हैं– सकाम और निष्काम। सकाम पुरुष भौतिक सुख की कामना करते हैं फिर भी यदि वे ब्रह्म विचार में प्रवृत्त होते हैं तो उसके फलस्वरूप उनके पुण्य बढ़ते हैं।

वे उन पुण्यों के फलस्वरूप स्वर्ग आदि उच्च लोकों का सुख बहुत काल तक भोगकर पुनः मनुष्य शरीर में आते हैं जहां उन्हें धर्मात्मा धनी माता– पिता मिलते हैं। दूसरे प्रकार के निष्काम योगभ्रष्ट ज्ञानवान् ब्रह्मवेत्ताओं के कुल में जन्म लेता है। वहां वह आत्म चिन्तन करने के अनुकूल वातावरण प्राप्त करता है और बिना किसी बाधा के आगे बढता हुआ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। अतः मनुष्य को हर परिस्थिति में आत्मचिन्तन व उपासना करते रहना चाहिए।